प्रथम अध्याय

आलोचना एक सर्वेक्षण

भूमिका :

प्रस्तुत शोध प्रबंध को क्रम देने के लिए सर्वप्रथम आलोचना या समालोचना पर विचार करना आवश्यक है । 'आलोचना एक सर्वेक्षण' शीर्षक से स्पष्ट है कि हम यहाँ आलोचना पर सर्वांग रूप से परंतु संक्षिप्त रूप में प्रकाश डालेंगे । आलोचना के अर्थ तथा स्वरूप, प्रकार और परिभाषा पर विचार कर आलोचना के मर्म तथा अवश्यकता को समझने का प्रयास किया जाएगा । इस अध्याय में आलोचना के पाश्चात्य, हिंदी तथा असमिया परंपरा पर विचार किया गया है । आलोचना का प्रारम्भ पाश्चात्य साहित्य में होने के बाद उसने किस प्रकार हिंदी साहित्य को प्रभावित किया उसपर प्रकाश डाला गया है । किसी भी भाषा में रचित साहित्यिक विधा का प्रभाव अन्य भाषा में पड़े बिना नहीं रह सकता । उसी प्रकार 'आलोचना' जो एक साहित्यिक विधा है उसका प्रभाव पाश्चात्य से प्राच्य और फिर अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में आकार कैसे फलते-फूलते विकासित हुआ उस पर यथाशक्ति प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है । क्योंकि प्रस्तुत शोध विषय असमिया आलोचना साहित्य पर आधारित है इसलिए पाश्चात्य साहित्यिक विधा आलोचना का प्रभाव किस प्रकार हिंदी साहित्य पर पड़ा और फिर हिंदी साहित्य से क्षेत्रीय भाषा असमिया में आकर असमिया साहित्य के भंडार को पुष्ट किया उस पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है ।

1.1 आलोचना का अर्थ और स्वरूप :

आलोचना शब्द को अंग्रेजी 'Criticism' (क्रिटिसिज़्म) शब्द का पर्यायवाची शब्द माना जाता है । इस शब्द की व्युत्पत्ति 'लुच' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है देखना । 'लुच' धातु में 'ल्युट' प्रत्यय जोड़ने पर 'लोचन' शब्द बनता है, इसमें 'आङ' उपसर्ग जोड़ने पर 'आलोचना' शब्द बना है । इस प्रकार 'आलोचना' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है । साहित्य के क्षेत्र में किसी कृति या रचना को सम्यक रूप से देखना और मूल्यांकन करना ही आलोचना है । साहित्यिक कृति के

सर्वांग या सांगोपांग निरीक्षण या विश्लेषण के लिए आलोचना का प्रयोग किया जाता है । अंग्रेजी 'क्रिटिसिज़्म' (Criticism) शब्द के लिए हिंदी में 'आलोचना' के अलावा और दो शब्दों का प्रयोग किया जाता हैं । वे हैं – समालोचना और समीक्षा ।

'समालोचना' शब्द का अर्थ है सम अर्थात सम्यक रूप से देखना, जानना, पहचानना या परखना । अर्थात साहित्यिक कृति को प्रभाव रहित होकर व्याख्या करना, उसका मूल्यांकन करना तथा उसके गुण-दोषों को दिखाना ही समालोचना है ।

'समीक्षा' शब्द का अर्थ है सम दृष्टि से देखना । सम+ईक्षा अर्थात सम्यक दर्शन करना और उसके बाद सर्वांग विवेचन करना ही समीक्षा है । किसी वस्तु या साहित्यिक कृति को सम्यक दृष्टि से पर्यवेक्षण करना ही समीक्षा कहलाता है ।

इस प्रकार आलोचना, समालोचना, और समीक्षा इन तीन शब्दों की अर्थ की व्याख्या करें तो इनका अर्थ एक ही निकलता है । साहित्य के क्षेत्र में साहित्यिक कृति को निष्पक्ष दृष्टि से देखकर उस पर विचार कर, उसके गुण-दोषों को उजागर कर स्वतंत्र रूप से अपना अभिमत व्यक्त कर पाठकों के समक्ष कृति को रखना ही आलोचना, समालोचना या समीक्षा है ।

" साहित्यिक आलोचना लेखक और पाठक के बीच की शृंखला है । यह साहित्यिक कृति के गुण-दोषों का निर्णय कर उसका मूल्यांकन करती है । यह केवल दोष दर्शन नहीं है, यह अपने व्यापक संदर्भ में मान का अवबोधन भी करती है और प्रसादन भी करती है । यह कार्य रचना के सूक्ष्म अध्ययन, सम्यक विवेचन, गुण-दोष के निरपेक्ष आंकलन और श्रेष्ठता संबंधी मूल्यांकन द्वारा ही संभव होता है । आलोचना कवि कर्म की प्रत्येक दृष्टिकोण से मूल्यांकन करके उसे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करती है, पाठकों का रुचि परिष्कार करती है और साहित्य की गतिविधि का निर्धारण करती है ।"[१]

समालोचना पर विचार करते हुए प्रेमघन जी का कहना था "समालोचना का अर्थ है पक्षपात रहित होकर न्यायपूर्वक किसी पुस्तक के यथार्थ गुण दोष का विवेचन करना ।"[२] आलोचना हमारी रुचि को परिष्कार करती है और किसी भी कृति का आस्वाद लेने में हमारी सहायता करती है । किसी कृति को पढ़कर हमारे मन में क्या प्रभाव पड़ता है, उसके प्रति हमारा विचार क्या होता है उसका विश्लेषण कृति को पढ़ने के उपरांत उस कृति का व्याख्या विश्लेषण कर, उस पर अपना मत व्यक्त कर उसका मूल्यांकन किया जाता है । यही आलोचना का कार्य है । 'अनुसंधान और आलोचना' पुस्तक में इस पर विचार करते हुए उल्लेख किया गया है कि आलोचना के अंतर्गत तीन कर्तव्य कर्म आते हैं – प्रभाव ग्रहण, व्याख्या विश्लेषण और मूल्यांकन अथवा निर्णय । आलोचना मूलतः कलाकृति द्वारा प्रमाता के हृदय में उत्पन्न प्रभाव को व्यक्त करती है, अर्थात प्रिय-अप्रिय प्रतिक्रिया को व्यक्त करती है । इसके उपरांत वह प्रतिक्रिया की प्रियता अथवा अप्रियता के कारणों का विश्लेषण करती है । सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार रूप का, मनोविज्ञान के अनुसार स्रष्टा और भावक की मानसिक परिस्थितियों का और समाजशास्त्र के अनुसार दोनों की सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण कर यह स्पष्ट करती है कि कोई कलाकृति भावक को प्रिय अथवा अप्रिय क्यों लगती है । और अंत में इन दोनों प्रक्रियाओं के आधार पर उसका मूल्यांकन किया जाता है । किसी न किसी रूप में आलोचना इन तीनों कर्तव्यों का निर्वाह करती हैं ।

1.2 आलोचना के प्रकार :

आलोचना को पाश्चात्य तथा प्राच्य के विद्वानों ने कई भागों में विभाजित किया हैं । इन्हीं विभागों को प्रकार के रूप में हम यहाँ संक्षिप्त रूप में विवेचन कर उन पर प्रकाश डाल रहे हैं ।

पाश्चात्य समालोचना में आलोचना की दो पद्धतियाँ प्रचलित है – सैद्धांतिक आलोचना और व्यावहारिक आलोचना ।

हिंदी आलोचकों ने आलोचना को निम्न भागों में विभाजित किया हैं –

सैद्धांतिक आलोचना, आत्मप्रधान आलोचना, निर्णयात्मक आलोचना, व्याख्यात्मक आलोचना, ऐतिहासिक आलोचना, तुलनात्मक आलोचना, मनोवैज्ञानिक आलोचना, वैज्ञानिक आलोचना, नई समीक्षा या प्रगतिवादी आलोचना ।

यहाँ पर सैद्धांतिक आलोचना को छोड़कर अन्य सभी आलोचना के प्रकार व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत आते हैं । प्रस्तुत अध्याय में पाश्चात्य तथा प्राच्य के सभी विद्वानों के द्वारा किए गए भेदों को एकत्र रूप में लेकर उनपर प्रकाश डाला गया हैं ।

क) सैद्धांतिक आलोचना – आलोचना की एक विशिष्ट पद्धति है सैद्धांतिक आलोचना । बहुत सी एक सी कृतियों का अध्ययन कर जब आलोचक आलोचना के मापदंड के रूप में किन्हीं सामान्य नियमों का निर्धारण करता है तब उस आलोचना को सैद्धांतिक आलोचना कहा जाता है । डॉ॰ श्यामसुंदर दास के अनुसार, "यही आलोचना का सामान्य और चिरंतन स्वरूप है । यह समालोचना सामान्य सिद्धांतों की स्थापना करता है । यह आलोचना एक प्रकार से आलोचना का शास्त्रीय पक्ष है । हडसन ने यद्यपि सैद्धांतिक आलोचना का वर्णन समालोचना के एक स्वतंत्र पद्धति के रूप में नहीं किया है । तथापि उसने इसके महत्त्व को परोक्ष रूप में स्वीकार किया है ।"[3] सैद्धांतिक आलोचना के दो पक्ष होते है – काव्यकृतियों के आधार पर सामान्य सिद्धांतों की स्थापना और सामान्य सिद्धांतों के आधार पर काव्यकृतियों की समीक्षा । संस्कृत काव्यशास्त्र और लक्षण ग्रंथ इसी प्रकार की आलोचना को लेकर चले थे ।

इस पद्धति के आलोचक की रुचि परिष्कृत रहती है, वे नियमों के अनुसार कार्य करती है । इसकी आलोचना की कसौटी तथा उसके निर्धारित मानदंड होते है । समालोचना का शास्त्रीय पक्ष स्पष्ट रहता है । इस आलोचना पद्धति में उचित तथा अनुचित के विवेक को काफ़ी महत्त्व दिया जाता है ।

ख) निर्णयात्मक आलोचना – मान्य सिद्धांतों के आधार पर जब काव्य कृति का मूल्यांकन हो तब उसे निर्णयात्मक आलोचना कहा जाता है । निर्णयात्मक आलोचना में आलोचक किसी भी आलोच्य कृति पर विचार कर अपना निर्णय देता है । समालोचक न्यायाधीश के रूप में प्रतिष्ठित होते है क्यों कि वे निर्णय देते हैं । साहित्यकार या कलाकार की मौलिकता या प्रतिभा पर विचार न कर शास्त्रीय नियमों को लागू किया गया है कि नहीं उस पर विचार किया जाता है । डॉ॰ नगेंद्र ने कहा है "वास्तव में व्याख्या करने के लिए, आश्वस्त करने के लिए आलोचना की शास्त्रीय पद्धति का अवलंबन अनिवार्य है- आलोचना में गांभीर्य और उत्तरदायित्व इसी से आता है ।"[४] हडसन ने निर्णयात्मक आलोचना को विशेष महत्त्वपूर्ण मानते हुए कहा है कि निर्णयात्मक आलोचक कुछ नैतिक और साहित्यिक सिद्धांतों को दृष्टि में रखकर अपना निर्णय दिया करते है ।

ग) आत्मप्रधान आलोचना - आत्मप्रधान आलोचना में आलोचक विषय की विवेचना में इतना डूब जाता है कि विषय वस्तु की अपेक्षा अपने भावों में अधिक डूबा रह जाता है । और उसकी आलोचना आलोचना की अपेक्षा साहित्यिक कृति बन जाती है । इसमें बुद्धि से अधिक महत्त्व भाव को दिया जाता है। इस प्रकार की आलोचना में स्वच्छंदता का प्राधान्य रहता है । आलोचक अपने रुचि के अनुकूल आलोच्य विषय को निर्वाचित करता है । अपने पक्ष को स्थापित करने के लिए आलोचक निंदा या प्रशंसा का सहारा लेता है । आलोचक अपने विचारों के अनुरूप कृति के प्रति अपना भाव व्यक्त करता हैं । भाव तथा कल्पना का सहारा लेकर आलोच्य कृति को प्रस्तुत किया जाता है । स्पिनगार के अनुसार, "किसी कृति को देखकर जिन भावों और प्रभावों की अनुभूति होती है उन्हें उसी तरह से प्रकट कर देना प्रभाववादी समीक्षक का कार्य होता है ।" (To have sensation in the presence of the work of art is to express them. That is the function of a criticism for an impressionist critic.")[५]

घ) व्याख्यात्मक आलोचना – व्याख्यात्मक आलोचना में आलोचक नियमों के बंधनों से मुक्त होकर साहित्यिक कृति की आलोचना करता हैं । किसी भी कृति को उसके वास्तविक रूप में निरपेक्ष भाव से देखकर लेखक के अनुभव का उदघाटन करना ही आलोचक का कार्य है । व्याख्यात्मक आलोचना में आलोचक पूर्वाग्रह, भावुकता, विरोध, आसक्ति आदि से मुक्त होकर आलोचना करता है । कपटता रहित होकर निजी व्यक्तित्व से पूर्ण व्यक्ति ही इस प्रकार की आलोचना कर सकता है । व्याख्या कलाकार के भावलोक का फिर से सर्जन करती है और आलोचना उस पर अपना निर्णय देती है । व्याख्यात्मक आलोचना में आलोचक सिद्धांतों और आदर्शों को त्यागकर एक अन्वेषक के रूप में रचयिता के अंतरात्मा में समा कर सहृदयतापूर्वक उसके आदर्शों, उद्देश्यों तथा विशेषताओं की व्याख्या और विवेचन करता हैं । डॉ॰ श्यामसुंदर दास ने साहित्यालोचन में व्याख्यात्मक आलोचना के संदर्भ में लिखा है "इसी व्याख्या के बल पर हम किसी कृति के महत्त्व का निर्णय कर सकते है । भावमयी समालोचना के लिए भी प्रस्तुत रचना का स्वरूप ज्ञान वांछनीय है जो कि व्याख्या से ही प्राप्त होता है ।"[६]

ङ) ऐतिहासिक आलोचना – ऐतिहासिक आलोचना में आलोचक लेखक या कवि पर पड़े हुए बाह्य प्रभावों का विश्लेषण करता है । यह प्रभाव प्राय: तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का होता हैं । आलोचक विवेचन कर लेखक या कवि का मूल स्रोत ऐतिहासिक या सामाजिक परिस्थितियों में खोजता हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रकार की आलोचना के माध्यम से सूरदास का परिचय देते हुए लिखा है – "जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष-धारा, जो काल की कठोरता में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरसता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में विद्यापति के कोकिल-कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील-कुंजों के बीच फैल मुरझाए मनों को सींचने लगी । (भ्रमरगीतसार)2"[७]

च) तुलनात्मक आलोचना – वर्तमान युग में तुलनात्मक आलोचना का महत्त्व काफ़ी है । इसके माध्यम से दो कवियों या लेखकों की विशेषतायों व विचारों की तुलना कर उनमें प्रकाश डाला जाता हैं । तुलना सदेव दो समान वस्तुओं के बीच ही होती है, इसलिए आलोचक को इस बात पर ध्यान रखना आवश्यक है कि वे जिसकी आलोचना कर रहे है वे हर दृष्टि से समान हो । इस प्रकार की आलोचना में केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं अपितु विचारों और प्रकारों की दृष्टि से भी तुलना की जाती हैं । लेखक का विभिन्न काल तथा देशों के मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रगति का अवलोकन कर विभिन्न साहित्यिक धाराओं का अध्ययन करना अभीष्ट है । इसलिए आलोचक को बहुज्ञ होने के साथ ही इस बात पर ध्यान रखना है कि उनका कर्तव्य केवल वर्णन, विवेचन, और विश्लेषण हैं निर्णय देना नहीं । एक ही कवि के कई ग्रन्थों के आधार पर विषय की परस्परिक रूप में तुलना हो सकती है अथवा एक ही भाषा के या अन्य भाषाओं के तद्विषयक कवियों, लेखकों और ग्रन्थों से विषय, भाव, भाषा, शैली आदि दृष्टियों से तुलना हो सकती हैं । आलोचक यदि पूर्ण वैज्ञानिक दृष्टि से अनासक्त भाव से दोनों पक्षों की समान रूप से विवेचना करे तभी यह आलोचना सफल सिद्ध होती है हिंदी साहित्य में देव और बिहारी को लेकर जो आलोचना हुए वह दुरूह और अनर्थकारी सिद्ध हुए क्यों कि आलोचकों ने व्यक्तिगत रुचि को ज्यादा प्रधान्य दिया ।

छ) मनोवैज्ञानिक आलोचना - मनोवैज्ञानिक आलोचना में कवि या लेखक के व्यक्तिगत जीवन, स्वभाव, चिंतन, परिस्थिति और प्रभाव आदि के आधार पर कृति का अध्ययन-मूल्यांकन किया जाता है । यह पद्धति बीसवीं शती की देन है । कुछ एक काव्य या साहित्यिक कृतियों की रचना का आधार मनोवैज्ञानिक होता है, जिसमें कवि या साहित्यकार अपने पात्रों के मन को व्यक्त करने की चेष्टा करता है । इसके माध्यम से साहित्यिक कृति के निर्माण में क्या समस्या आयी थी उसके अध्ययन में

विशेष सहायता मिलती है । कृति के माध्यम से लेखक या कवि अपने पात्रों के मन के भावों को अभिव्यक्त करता हैं । परंतु आलोचक इस प्रकार की आलोचना में इतना तल्लीन हो जाता है कि कभी-कभी कृति की उपेक्षा हो जाती है ।

ज) गवेषणात्मक या वैज्ञानिक आलोचना – डॉ॰ राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार जब आलोचक विज्ञान के क्षेत्र में प्रचलित वर्गीकरण पर समीक्षा-सिद्धांतों को साहित्य समीक्षा की कसौटी बनाकर आलोचना करता है, तब उस आलोचना को वैज्ञानिक आलोचना कहते है । यह आलोचना पद्धति अधिकांशत: बौद्धिक होती है । हिंदी के अधिकांश शोध प्रबंध इसी प्रणाली पर लिखे जा रहे हैं । यह आलोचना आजकल काफ़ी सफल है और लोकप्रिय भी है । इस प्रणाली की प्रक्रिया कार्य-कारण संबंध पर केन्द्रित है और इसलिए इसकी शैली यंत्रवत हो जाती है । विद्वानों का मानना है कि भावुक आलोचक या पाठक के लिए यह शैली यंत्रवत और निष्प्राण प्रतीत होने लगती है ।

झ) प्रगतिवादी आलोचना – आजकल के बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में प्रगतिवादी आलोचना का महत्त्व अनुमेय है । रूसी राज्यक्रांति के बाद कार्लमार्क्स द्वारा प्रतिपादित द्वंद्वात्मक भौतिकतावाद और वर्ग संघर्ष साहित्य के मूल्यांकन का आधार बना और इसी से प्रगतिवादी या मार्क्सवादी आलोचना का प्रारम्भ हुआ । साहित्य को वर्ग की उपज मानकर सामाजिक अवश्यकताओं के सहारे उसका मूल्यांकन किया जाता है । इसमें वर्ग संघर्ष के आदर्श और विचार धाराओं को महत्त्व दिया जाता है । समाजवादी आलोचक राजनीति के दर्पण में कृति को देखते है जिस कारण साहित्य की उपेक्षा हो जाती है । प्रगतिवादी आलोचना में आलोचक काव्य या अन्य साहित्यिक विधा के उपयोगिता पक्ष का उदघाटन करता है और प्रदर्शन भावना को छोड़ धरातल पर रहकर ही कृति की आलोचना करता है । यहाँ जनवादी तथा समाज के उपयोगी रचनाओं को ही महत्त्व दिया जाता है, इससे युवा वर्ग में क्रांति की भावना जाग्रत होती है । यहाँ समाज और साहित्य का संबंध स्पष्ट कर काल्पनिकता, पलायनवादिता आदि

विचारधाराओं का खंडन किया जाता है । इसमें साम्यवादी दृष्टिकोण से समाज में साहित्य को प्रस्तुत करने पर बल दिया जाता है । श्री अमृतराय ने संक्षेप में इस आलोचना पद्धति का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है कि "मार्क्सवादी आलोचना साहित्य वह समाज शास्त्रीय आलोचना है, जो साहित्य के ऐतिहासिक तथा गतिशील पक्ष के संबंध का उदघाटन करती है ।"[८] हिंदी साहित्य क्षेत्र में प्रगतिवादी आलोचकों में रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृत राय, शिवदानसिंह चौहान उल्लेखनीय हैं ।

इस प्रकार पाश्चात्य और प्राच्य आलोचना साहित्य अपने विभिन्न प्रकारों से पल्लवित होकर निरंतर एक विशाल आलोचना साहित्य का निर्माण कर रहा है ।

1.3 आलोचना की परिभाषा और परंपरा :

आलोचना के स्वरूप को स्पष्ट रूप से जानने के लिए कई विद्वानों ने अपना अभिमत व्यक्त किया है । पाश्चात्य एवं भारतीय विद्यानों ने कला और साहित्य के क्षेत्र में आलोचना के महत्त्व का आकलन किया है तथा आलोचना को परिभाषित किया है । आलोचना या समीक्षा के बारे में व्यक्त विचार उनका निजी अनुभव रहा है । कला तथा साहित्य मनुष्य के भाव और विचार का क्षेत्र है । आलोचना के माध्यम से इन्हीं भावों और विचारों का आंकलन किया जाता हैं । आलोचक में भावों को समझने की प्रतिभा होनी चाहिए । आलोचना या समीक्षा के तीन कर्तव्य (जिनके बारे में ऊपर विचार किया जा चुका है) प्रभाव ग्रहण, व्याख्या- विश्लेषण और मूल्यांकन अथवा निर्णय के आधार पर आलोचकों ने आलोचना या समीक्षा संबंधी परिभाषा व्यक्त किए हैं । नीचे हम इन परिभाषाओं पर विचार करने जा रहे हैं साथ ही आलोचना की पाश्चात्य, भारतीय और असमिया परंपरा पर भी प्रकाश डालने जा रहे हैं ।

1.3.1 आलोचना संबंधी पाश्चात्य परिभाषा तथा परंपरा –

आलोचना या समालोचना का प्रारम्भ पाश्चात्य साहित्य में ही हुआ था । यहाँ पर हम आलोचना के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों के अभिमतों पर दृष्टिपात करने के साथ ही पाश्चात्य साहित्य में आलोचना का प्रारम्भ कब-कैसे हुआ उस पर प्रकाश डालेंगे । साथ ही उसके विकास पर भी आलोकपात करेंगे ।

पाश्चात्य आलोचना की परिभाषा:

पाश्चात्य आलोचकों ने आलोचना को किस प्रकार परिभाषित किया है उसी पर हम यहाँ नजर डालने जा रहे हैं-

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार "आलोचना का अर्थ वस्तुओं के गुण दोषों की परख करना है, चाहे वह परख साहित्य के क्षेत्र में की गई हो या ललित कला के क्षेत्र में । स्वरूप निर्णय और निर्णय की अभिव्यक्ति इसमें दोनों आ जाते हैं ।(Criticism is the art of judging the qualities and values of an aesthetic object whether in literature or the fine arts. It involves the formation and expression of judgment.)"[९]

आई .ए रिचर्डस .ने मूल्य निर्धारण को ही आलोचना की प्रमुख विशेषता मानते हुए कहा है "आलोचना साहित्यिक अनुभूति के विचारोपरान्त उनका सम्यक विवेचन करती है ।(To set up a critic is to set up as a judgment of value.)" उनके अनुसार आलोचक की नियुक्ति करना निर्णयक की नियुक्ति करना है ।"[१०]

वर्सफ़ील्ड के अनुसार "आलोचना कला और साहित्य के क्षेत्र में निर्णय की स्थापना करता है ।(Criticism is the exercise of judgment in the province of art and literature.)"[११]

मैथ्यू आर्नल्ड ने आलोचना के मुख्य गुण तटस्थता के आधार पर आलोचना को परिभाषित करते हुए कहा है "आलोचक तटस्थ होकर वस्तु के स्वरूप को जानने की लालसा से आलोचना करता है । अतएव आलोचना संसार के सर्वोत्तम विचारों को व्यक्त करती है ।(The

criticism, real criticism is essentially exercise of this very quality (curiosity and disinterested love of free play of mind).It obeys on instinct prompting to try to know the best that is known and thought in the world.)"[१२]

कार्लाइल के अनुसार " आलोचना पुस्तक के प्रति उदभूत आलोचक की मानसिक प्रतिक्रिया का परिणाम है ।(Literary criticism is nothing and should be nothing but the recital of one's personal adventures with a book.)"[१३]

एडिसन ने आलोचना के संदर्भ में समालोचक के धर्म के बारे में कहा है "समालोचक का धर्म कलाकारों का दोष निकालना नहीं हैं, बल्कि उनका कर्त्तव्य है उनकी कृति का सौंदर्योदघाटन करना ।"[१४]

ड्राइडन के अनुसार " आलोचना वह कसौटी है जिसकी सहायता से किसी रचना का मूल्यांकन किया जाता है । वह उन विशेषताओं का लेखा प्रस्तुत करती है जो साधारण तथा किसी संभ्रांत पाठक को आनंद प्रदान कर सकें ।"[१५]

ऊपर की परिभाषाओं को पढ़ने के पश्चात कह सकते है कि आलोचना के माध्यम से किसी कृति का मूल्यांकन कर सकते है तथा उस पर निर्णय प्रदान कर सकते है । किसी साहित्यिक कृति को पढ़कर हमारे मन में उस कृति के प्रति क्या विचार उत्पन्न होते है उसका प्रस्फुटन आलोचना के माध्यम से होता है । आलोचक न केवल उस कृति के गुण दोष का आकंलन करता है बल्कि उसकी विशेषताओं की ओर हमारी दृष्टि आकर्षित करती हैं । आलोचना एक ऐसा माध्यम है जो साहित्य और पाठक के संबंध को सामान्य भावभूमि पर प्रतिष्ठित करती है तथा साहित्य को समझने में मार्ग प्रदर्शित करती है ।

पाश्चात्य आलोचना परंपरा –

आलोचना का प्रारम्भ साहित्य सृजन के उपरांत हुआ है परंतु कई बार कलाकार रचना करने से पूर्व अपने मस्तिष्क में एक निश्चित आदर्श की कल्पना कर लेता है और लिखते समय

इसके अनुकूल बने रहने का प्रयत्न करता है । इस तरह से देखा जाए तो आलोचना का प्रारम्भ तथा विकाश साहित्य सृजन के साथ ही हुआ है । प्रकृति के प्रांगण में जब से मनुष्य ने यह अनुभव किया है कि आज का मौसम कल की अपेक्षा सुंदर है अथवा अन्य किसी अनुभव को प्राप्त किया है तब से आलोचना का उदय हुआ है । इस प्रकार देखा जाए तो आलोचना का इतिहास अतीव प्राचीन है और पाश्चात्य जगत में काव्यशास्त्र की परंपरा अति सम्बृद्ध है । यहाँ पाश्चात्य आलोचना साहित्य को तीन काल खंडो में विभाजित कर उन पर दृष्टिपात करना हमारे लिए सुविधाजनक होगा ।

सबसे पहले विचार करेंगे पाश्चात्य आलोचना साहित्य के प्राचीन कालखंड पर । इस काल की समय सीमा मानी जाती है ई॰ पू॰ पाँचवीं शती से चौथी शती तक । पाश्चात्य साहित्य का मूल प्रामाणिक उद्‌गम ग्रीस या यूनान में हुआ था । पाश्चात्य आलोचना का प्राचीनतम रूप होमर के महाकाव्य 'इलियड' और 'ओडेसी' में ही देखने को मिलता है । होमर के निपुण काव्यकृति को देखकर यह अनुमान किया जाता है कि होमर के पूर्व भी यूनान में साहित्य सृजन होता रहा है परंतु होमर के पूर्व की कृतियाँ उपलब्ध नहीं है । होमर के समय में भी अन्य साहित्यिक कृतियाँ रची गयी होंगी परंतु वह अनुपलब्ध है । साथ ही होमर के साहित्य विषयक मान्यताओं या सिद्धांतों का भी कोई विवरण स्वतंत्र रूप में उपलब्ध नहीं होता तथा 'इलियड' और 'ओडेसी' महाकाव्यों का तदयुगीन सभ्यता एवं संस्कृति के परिचय की दृष्टि से ही असाधारण महत्त्व माना जाता है । होमर का माननना था की काव्यकृति का ध्येय आनंद प्रदान करना होना चाहिए । होमर के उपरांत हेसियड, पिंडार, गोर्जियास और एरिस्टोफेनीज़ आदि विचारकों ने प्राचीन यूनानी आलोचना साहित्य को विकसित किया है परंतु यूनान के प्राचीन चिन्तकों में सुकरात का विशिष्ट स्थान है । सुकरात का समय 469 ई॰ पू॰ से 399 ई॰ पू॰ तक माना गया है और साहित्य के क्षेत्र में सुकरात के मंतव्यों को मूल आधार के रूप में ग्रहण किया गया है । यद्‌यपि सुकरात ने किसी कृति की रचना नहीं की है और उनका उल्लेख भी नहीं मिलता है लेकिन उनकी वैचारिक दृष्टिकोण का संकेत उनके शिष्य तथा उनके परवर्ती विचारकों में अवश्य मिलता है । सुकरात ने नीति, ज्ञान,

धर्म, दर्शन, राजनीति आदि के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं तथा यूनान में नीतिपरक आलोचना का श्रेय सुकरात को ही जाता है । यहाँ ध्यान देने योग्य है कि सुकरात के ही शिष्य प्लेटो को पाश्चात्य आलोचना साहित्य का आदि प्रवर्तक माना जाता है ।

पाश्चात्य आलोचना का आदि आचार्य प्रसिद्ध ग्रीक चिंतक प्लेटो (427 ई॰पू॰–347 ई॰पू॰) को माना जाता है । उन्होंने प्रसिद्ध ग्रंथ 'रिपब्लिक' में 'कला' के संबंध में अपने विचार व्यक्त किया है । उनके द्वारा रचित 'रिपब्लिक', 'फेडरस' और 'इओन' में उन्होंने आलोचना संबंधी अपने विचार व्यक्त किए है । इनके माध्यम से उन्होंने काव्य की क्षमता को विस्तारित रूप में व्याख्या की हैं ।

"The Ion is an early and simple preliminary to Plato's more elaborate attacks on the illusionistic and emotive power of poetry (and of rhetoric) in the Republic, Phaedrus and other mature dialogues."[१६]

प्राचीन यूनान में जिस अनुकरणात्मक सिद्धान्त का प्रवर्तन होमर ने किया था उसी का सबल तुष्टीकरण प्लेटो ने किया था और इसी सिद्धान्त को आधार बनाकर उन्होंने विविध विषयक विचार व्यक्त किया है । प्लेटो ने काव्य का उद्देश्य केवल आनंद प्रदान करना ही नहीं माना है उनके अनुसार साहित्य का मूल्यांकन सत्य पर आधारित होना चाहिए ।

प्लेटो ने अपने समीक्षा के माध्यम से मानव कल्याण की बात कही है- "प्लेटो ने वस्तु सत्य को अधिक महत्त्व दिया और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा को मानव कल्याण के लिए अनिवार्य माना ।"[१७]

यद्यपि प्लेटो के पश्चात आइसांक्रेटीज, ईस्किलिस, सोफ़ोक्लोज और यूरोपाइडीज़ आदि विद्वानों ने यूनानी आलोचना साहित्य को सम्पन्न किया परंतु प्लेटो के पश्चात अरस्तू को ही ग्रीक का अनन्य समीक्षक माना जाने लगा । उनका समय था 384 ई॰ पू॰ से 322 ई॰ पू॰ तक । उन्होंने काव्य के रूप और तत्वों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । अरस्तू ने कला को

मात्र अनुकृति न मानते हुए उसके भावित रूप का अनुकरण माना है । उनकी दो कृति क्रमश: 'पोएटिक्स' एवं 'रेटोरिक्स' काव्यशास्त्र संबंधी रचना हैं । अरस्तू ने अनुकरण तथा विरेचन सिद्धान्त की स्थापना की हैं । उनके अनुसार ट्रेजेडी में मानव भावनाओं का विरेचन होता है इसलिए उनका मानना है कि साहित्य में दु:खात नाटक का महत्त्व है ।

अरस्तू के शिष्य थियोक्रेस्टस ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'दी इंटरप्रिटेशन' में साहित्य सिद्धांतों को प्रस्तुत किया है परंतु पाश्चात्य आलोचना साहित्य में अरस्तू के पश्चात लोंजाइनस को ही यूनान का प्रमुख विचारक माना जाता है । लोंजाइनस ने 'पेरिइप्सुस' की रचना की जिसका अनुवाद अँग्रेजी में 'आंन दि सब्लाइम' नाम से हुआ है । उन्होंने साहित्य में उदत्त तत्व के महत्त्व का आंकलन किया है ।

लोंजाइनस के पश्चात साहित्य और कला के चिंतन का केंद्र यूनान से हटकर रोम की ओर गया और धीरे-धीरे लेटिन आलोचना साहित्य का विकास होने लगा । यूनानी आलोचना का प्रभाव रहते हुए भी लेटिन आलोचना की आधार-भूमि उसके पहले ही तैयार हो चुकी थी । लेटिन आलोचना के विकास में सिसरो, लुक्रेटियस, बर्जिल, होरेस, प्लिनी, क्लिन्टीलियन विशेष माने जाते हैं । इनमें होरेस और क्लिन्टीलियन का ही आलोचना के क्षेत्र में महत्त्व हैं । होरेस ने साहित्य रचना के लिए औचित्य पर सर्वाधिक बल दिया है और उनके अनुसार कृति के रचना के लिए कृतिकार को व्यावहारिक बुद्धि से काम लेना चाहिए । क्लिन्टीलियन ने साहित्यालोचन में शैली को महत्त्व दिया है परंतु किसी महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त की स्थापना नहीं की है ।

तत्पश्चात ई॰ चौथी शती से पंद्रहवीं शती तक पाश्चात्य आलोचना साहित्य का मध्यकाल आरंभ होता है । इस काल में लेटिन आलोचना का महत्त्व कम होता गया और इंग्लैंड में नव-जागरण युग का आरंभ हुआ । इस युग को साहित्य आलोचना के क्षेत्र में अंधकार का युग माना जाता है । यद्यपि इस युग में बीडी, आलकुरण, राजर बेकन, दांते, रिचर्ड बरी, जांज विक्लिफ जैसे कई आलोचक हुए लेकिन इनमें दांते ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इटली का महाकवि दांते ने

यूरोप में सांस्कृतिक जागरण का शुभारंभ किया उन्होंने लेटिन भाषा के स्थान पर इटली के भाषा को साहित्य सृजन का माध्यम बनाया । उन्होंने 'डिवाइन कामेडी' नामक महाकाव्य की रचना की और काव्य में विषय वस्तु को महत्त्व प्रदान करते हुए प्रेम तथा नैतिक सौंदर्य पर बल प्रदान किया है । कान ग्रांते डेलान स्काला दांते के प्रसिद्ध आलोचनात्मक पत्र के संरक्षक है, जिसे दांते ने उन्हें भेजा था और उसी पत्र को भूमिका के रूप में अपने पुस्तक 'पैराडाइज़' में प्रस्तुत किया है ।

सोलहवीं शती से आधुनिक पाश्चात्य आलोचना साहित्य का आरंभ हुआ जो अब तक चल रहा है । इस युग में सर फिलिप सिडनी, बेन जानसन, ड्राइडन, जोसेफ एडिसन, एलेक्जेंडर पोप, सेमुएल जानसन, गेटे, जेम्स हविस्लर, एडगर एलन पो, वाल्टर पेटर, आक्सर वाइल्ड, वर्ड्सवर्थ, कोलरिज, टेन, मैथ्यू आर्नल्ड, क्रोचे, आई॰ ए॰ रिचर्ड्स, इर्विंग बैबीट, मोरे, एजरा पाउंड, बोदलेयर, स्टेफन, टी॰ एस॰ इलियट, टेट, वारेन, मारिस गर्ल्स, ब्लेकमूर, ज्या पल सात्र, अल्बर्ट कामू, फ़्रांज काफ्का जैसे महान आलोचक हमें मिले । इन आलोचकों ने उत्तोरोत्तर पाश्चात्य आलोचना का विकाश किया और कई प्रमुख सिद्धांतों की स्थापना की । वास्तव में आधुनिक कालीन साहित्य आलोचना का स्वरूप सिडनी के 'दि डिफेंस ऑफ पोएट्री' में देखने को मिलती है । वे साहित्य सृजन में स्वतंत्र प्रणाली के कट्टर समर्थक थे । सिडनी के बाद बेन जानसन का नाम आता है । उन्होंने साहित्य के विविध रूपों पर अपना विचार व्यक्त करते हुए साहित्य के विविध पक्षों का सम्यक विवेचन किया हैं । 'दि पोएटास्टर', 'कंवर्सेशंस' नामक में ग्रंथो में उन्होंने अपने साहित्य संबंधी भाव व्यक्त किए हैं । राजकवि जॉन ड्राइडन अपने समय के महान आलोचक थे । उन्होंने 'ऐसे ऑफ ड्रामेटिक पोएट्री' में अपना आलोचनात्मक विचार व्यक्त किया है । एडीसन तथा एलेक्जेंडर पोप ने अपनी आलोचनात्मक प्रतिभा का प्रकाशन अपने गरन्थोन के माध्यम से किया । पोप की 'ऐसे ऑन क्रिटिसिजम' विश्व विख्यात है । फिर अठारहवीं शती के सेमुएल जॉनसन ने अपने युग में साहित्य आलोचना को नवीनता प्रदान की । प्रसिद्ध जर्मन आलोचक गेटे का भी साहित्यालोचन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है । उन्नीसवीं शती में क्रोचे जैसे महान समालोचक, विचारक सामने आए । उन्होंने अभिव्यंजना बाद की स्थापना की । आप न केवल

कला के मीमांसक थे बल्कि गंभीर तत्ववेत्ता दार्शनिक भी थे । आप ने अनेक विषयों में नवीन दृष्टिकोण से विचार प्रकट किया । 'एस्थैटिक' उनका विश्वविख्यात ग्रंथ है । आधुनिक पाश्चात्य आलोचकों में आई॰ ए॰ रिचर्ड्स का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । उनकी रचना 'प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज़्म' साहित्य आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कृति है । उन्होंने सैद्धांतिक आधार पर साहित्य की आलोचना की है । फिर आता है बीसवीं शती के महान आलोचक टी॰ एस॰ इलियट का नाम । उनकी 'ट्रेडिसन एंड इंडिविजुयल' नामक आलोचनात्मक कृति बहुचर्चित है । इस प्रकार पाश्चात्य आलोचना का विकास होता रहा और पाश्चात्य आलोचना विधा अन्य भाषा के साहित्य को भी प्रभावित करती रही ।

1.3.2 आलोचना सम्बंधी प्राच्य परिभाषा तथा परंपरा :

यहाँ पर हम आलोचना के संबंध में प्राच्य के विद्वानों के अभिमतों पर दृष्टिपात करने के साथ ही हिंदी साहित्य में आलोचना का प्रारम्भ कब-कैसे हुआ उस पर प्रकाश डालेंगे । साथ ही उसके विकास पर भी आलोकपात करेंगे ।

आलोचना संबंधी प्राच्य विद्वानों की परिभाषा:

आलोचना साहित्य पर हिंदी साहित्य के कई विद्वानों ने अभिमत व्यक्त किया हैं । इन विद्वानों में से कुछ एक के विचारों का ही उल्लेख यहाँ किया गया है ।

हिंदी आलोचक डॉ॰ श्यामसुंदर दास ने आलोचना के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है "साहित्य क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है । ..... यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या माने तो आलोचना को व्याख्या की व्याख्या मानना पड़ेगा ।"[१८]

आचार्य गुलाब राय ने आलोचना के कार्य और प्रभाव का विवेचन करते हुए कहा है "आलोचना का मुख्य उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद करना और पाठकों को

उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उसकी रुचि का परिमार्जन करना एवं साहित्य की गतिविधि निर्धारित करने में योग देना है ।"[१९]

आलोचना तथा आलोचक पर विचार करते हुए डॉ॰ तिवारी ने कहा है, "कला और साहित्य के मूल्यांकन का प्रयत्न ही समीक्षा या आलोचना है और आलोचक वह व्यक्ति है जिसमें कलाकृतियों के उचित मूल्यांकन की योग्यता हो ।"[२०]

समीक्षा की एक अत्यंत सटीक परिभाषा डॉ॰ देवराज ने दी है । उन्होंने आलोचना के बारे में कहा है, "आलोचना किसी कलाकृति में निबद्ध अनुभूति के विश्लेषण, व्याख्या और मूल्यांकन का प्रयत्न है ।"[२१]

इस तरह विभिन्न विद्वानों ने हिंदी आलोचना को परिभाषित किया है ।

भारतीय(हिंदी) आलोचना की परंपरा –

हिंदी आलोचना का वास्तविक रूप में प्रारम्भ आधुनिक काल में ही हुआ परंतु इसका प्रारम्भ संस्कृत काव्यशास्त्र से जोड़ा जा सकता है । प्राच्य समालोचना ने पाश्चात्य समालोचना का किंचित अनुकरण करने पर भी अपना स्वतंत्र सत्ता बनाए रखा है । भारतीय आलोचना की परंपरा का प्रारम्भ संस्कृत साहित्य से हुआ । भरतमुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' से इस परंपरा का प्रारम्भ हुआ । संस्कृत साहित्य में भरतमुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' ही प्रारम्भिक काव्यशास्त्र है जिसमें नाट्य के विभिन्न तत्व, जिसकी मूल विषय वस्तु अभिनय थी और प्रधानत रस पर विचार किया गया है । रस अभिनय का मुख्य अंग है । इसी पर विस्तृत आलोचना नाट्यशास्त्र में किया गया है । रस के भाव विषयक आलोचना से ही संस्कृत (भारतीय) साहित्य में आलोचना की धारा का प्रारम्भ हुआ । तत्पश्चात भामह द्वारा काव्यालंकार की रचना की गई । आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श की रचना की और आचार्य जगन्नाथ ने रस गंगाधर रचा । विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण की रचना की । इन सभी काव्यग्रन्थों (संस्कृत साहित्य में काव्य से तात्पर्य गद्य

और पद्य रूप में रचित सृष्टि मूलक रचना है) में अलंकार और रस पर विवेचना की गयी हैं । काव्य के लक्षण, काव्य किसे कहते है, काव्य के प्रकार, काव्य में अलंकार की प्रधानता, रस की प्रधानता, ध्वनि, औचित्य की प्रधानता आदि पर विचार किया गया हैं । तत्पश्चात भक्तिकाल का समय आता है । इस काल में कवियों की परिचयात्मक रचनाएँ सामने आयी । इनमें उल्लेखनीय है दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, बावन वैष्णवन की वार्ता आदि । सूरदास की साहित्य लहरी, नन्ददास की रस मंजरी व विरह मंजरी, ध्रुवदास की रस हीरावली, कृपाराम की हिततरंगिणी, रहीम की बरवै नायिका भेद आदि ग्रन्थों में प्रतिपाद्य का चित्रण किया गया हैं न कि सिद्धांत विवेचन । अपने इष्ट देवताओं के लीलाओं का गान करना ही इनका मुख्य उद्देश्य रहा है लेकिन इनमें भी थोड़ी सी आलोचना की झलक मिलती है ।

रीतिकाल में संस्कृत काव्यशास्त्रीय परंपरा का निर्वाह किया गया । केशवदास द्वारा रचित कविप्रिया और रसिकप्रिया से इसका प्रारम्भ होता हैं । परंतु काव्यशास्त्रीय दृष्टि से इनका इतना महत्त्व नहीं है । चिंतामणि द्वारा रचित कविकुलकल्पतरु , कुलपति का रस रहस्य, देव का भाव विलास, काव्य रसादन, श्रीपति का काव्य सरोज, सोमनाथ का रस पीयूस निधि, भिखारी दास का रस-सारांश, शृंगार निर्णय, पद्माकर का जगदविनोद ऐसे ग्रंथ हैं जिनमें काव्य में रस, अलंकार, छंद आदि का वर्णन किया गया हैं । परंतु इन सभी में संस्कृत काव्यशास्त्रीय परंपरा की झलक मिलती हैं ।

हिंदी साहित्य में आलोचना की वास्तविक परंपरा का प्रारम्भ आधुनिक काल में हुआ है । भारतेन्दु युग में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समालोचना का प्रारम्भ हुआ । भारतेन्दु जी स्वयं 'कवि वचन सुधा' और 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन' में कुछ समालोचनात्मक लेख छापते रहते थे । इस युग की आलोचनाएँ पुस्तकों के परिचय के रूप में ही थीं । पुस्तक-परिचय, उपदेशात्मकता तथा नोटों के रूप में कुछ समीक्षात्मक निबंध इस युग में प्रकाशित होते रहें हैं । भारतेन्दु जी ने भी 'मुद्राराक्षस' की भूमिका में एक समालोचनात्मक नोट लिखा था । इस युग में पंडित बालकृष्ण

भट्ट जी ने 'हिंदी प्रदीप' में 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' (जुलाई, 1881) शीर्षक लेख लिख कर इस परंपरा को आगे बढ़ाया । उन्होंने साहित्य को इस रूप में परिभाषित किया था "साहित्य यदि जनसमूह के चित्त का चित्रपट कहा जाए तो संगत है, किसी देश का इतिहास पढ़ने से केवल हम उस देश का बाहरी हाल जान सकते है पर साहित्य के अनुशीलन से कौम के समय-समय के आभ्यांतरिक भाव परिस्फुट हो सकते हैं ।"[२२] इस तरह भारतेन्दु युग में हिंदी आलोचना का लगातार विकास होता रहा जिसका नवीन रूप महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के समय देखने को मिलता है । द्विवेदी युग का प्रारम्भ सन 1900 ई॰ में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के माध्यम से हुआ । इस युग की अधिकांश रचनाएँ गुण-दोष-कथन प्रणाली पर आधारित हैं । उन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्र को ही कवि की कसौटी माना और समालोचना के लिए नैतिकतावादी आदर्श की स्थापना की । "द्विवेदी जी ने गुण दोष विवेचन की परिचयात्मक शैली को अपनाया था, जिसमें वे तर्क के साथ कभी कभी कटाक्ष और व्यंग भी करते थे ।"[२३] द्विवेदी जी ने काव्य के प्रत्येक क्षेत्र में सुधारवादी दृष्टिकोण की स्थापना की है । आपने सैद्धांतिक और व्याख्यात्मक दोनों प्रकार की आलोचनाओं का विकास किया । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका में 'पुस्तक-परीक्षा' नाम से एक स्तम्भ रखा और उस स्तम्भ में स्वयं पुस्तकों की समीक्षा लिखी । इस युग के प्रमुख आलोचक रहे- पंडित बालकृष्ण भट्ट, मिश्रबंधु तथा पद्मसिंह शर्मा । मिश्रबंधु में सैद्धांतिक और निर्णयात्मक दोनों ही पद्धतियों का परिदर्शन होता हैं । 'हिंदी नवरत्न' और 'मिश्रबंधु विनोद' इनकी प्रमुख आलोचनात्मक कृतियाँ हैं । पंडित पदमसिंह शर्मा ने तुलनात्मक आलोचना प्रणाली और प्रभाववादी आलोचना को अपनाया । 'बिहारी की सतसई' इनकी प्रमुख रचना है । प्रभाववादी तथा काव्यात्मक आलोचना का श्रेष्ट निदर्शन शर्मा जी के आलोचना में देखने को मिलता है । उदाहरणस्वरूप 'पर वाह बिहारीलाल, धन्य तुम्हारी प्रतिभा ! जिहि प्रतिभा और कछू जेहि बस होत सुजान बात कहीं है । पर देखिए तो आलम ही निराला है क्या तान-कर शब्द-भेदी तीर मारा है, लुटा ही दिया ।' द्विवेदी युग के समाप्त होते-होते सैद्धांतिक आलोचना धीरे-धीरे विश्लेषण और तथ्य-निरूपण की और अग्रसर होने लगी और आलोचना साहित्य

विकासोन्मुख होता गया । तत्पश्चात शुक्ल युग का आरंभ हुआ और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिंदी आलोचना परंपरा को विकास के शिखर तक पहुँचाया । उनके युग में बाबू श्यामसुंदर दास, आचार्य गुलाब राय, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ॰ सत्येंद्र जैसे आलोचक हुए जिन्होंने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । फिर स्वच्छंदतावादी आलोचना की शुरुवात हुई । आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ॰नगेंद्र, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी इस युग के महत्त्वपूर्ण आलोचक रहें । प्रगतिवादी आलोचकों में डॉ॰ रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान का योगदान काफ़ी उल्लेखनीय हैं । नयी समीक्षा पद्धति का विकास हुआ नयी रचनाओं की संवेदना और उसके सौंदर्य के परख के लिए । अज्ञेय, मुक्तिबोध, विजय देव नारायण शाही, नलिन विलोचन शर्मा, डॉ॰ नामवर सिंह ने नयी समीक्षा पद्धति के जरिए नूतन साहित्यिक कृतियों की आलोचना की और काव्य तथा साहित्य के क्षेत्र में नयी दिशा का निर्देश किया । इस तरह हिंदी साहित्य आलोचना का भंडार लगातार पुष्ट हो रहा है और उत्तोरोत्तोर विकसित हो रही हैं ।

1.3.3 असमिया आलोचना की परिभाषा तथा परंपरा –

समालोचना की असमिया परिभाषा – यहाँ पर हम आलोचना के संबंध में असमिया भाषा के विद्वानों के अभिमतों पर दृष्टिपात करने के साथ ही असमिया साहित्य में आलोचना का प्रारम्भ कब-कैसे हुआ उस पर प्रकाश डालेंगे । साथ ही उसके विकास पर भी आलोकपात किया जाएगा ।

समालोचना को परिभाषित करते हुए कई असमिया विद्वानों ने अपने अभिमत व्यक्त किए हैं । इन्हीं विद्वानों में कुछ एक विद्वानों के अभिमत पर यहाँ प्रकाश डाला जायेगा ।

डॉ॰ बिरिञ्चि कुमार बरुआ ने आलोचना की विशिष्टता और साहित्य तथा समालोचना को एक दूसरे का परिपूरक बताते हुए कहा है "समालोचना एक ओर से साहित्य का अनुगामी है तो दूसरी दृष्टि से उसका पूर्वगामी भी है । एक पुष्ट तथा वैचित्र पूर्ण साहित्य की सृष्टि के बिना

समालोचना भी आगे नहीं बड़ सकती है; और समालोचना ही साहित्य को दिशा निर्देश कर साहित्य की सृष्टि की ओर अग्रसारित करती हैं ।"[२४]

डॉ॰ महेश्वर नेओग ने समालोचना पर टिप्पण करते हुए कहा है "साहित्य समालोचना असमिया साहित्य में पाश्चात्य के दान स्वरूप आया है । अंग्रेजी रोमांटिक साहित्य में समालोचना एक विशिष्ट अंग के रूप में परिगणित हुई थी ।"[२५]

समालोचना की असमिया परंपरा :

प्राचीन असमिया साहित्य आलोचना के क्षेत्र में उतना सम्बृद्ध नहीं था । साहित्य की सृष्टि धर्म की चर्चा एवं काव्य रसास्वादन हेतु किया जाता था । परंतु समय के साथ साथ आलोचना का महत्त्व लोगों को समझ में आने लगा और आलोचना साहित्य का विकाश होने लगा ।

असमिया आलोचना का प्रारम्भ अरुणोदोई युग में हुआ । अरुणोदोई पत्रिका (सन1846-1880) ही असमिया की पहली आलोचनात्मक पत्रिका है जिसमें आलोचनात्मक दो-एक परिचयसूचक लेख प्रकाशित हुए थे । परंतु इस युग में प्रकृत आलोचना का प्रारम्भ नहीं हुआ था । इस युग में प्रमुखत भाषा संबंधी समालोचना को ही प्रधानता मिली थी । आनंदराम ढेकीयाल फुकन, ब्रन्सन, ब्राउन, फारवेल, रबिन्सन, हेमचन्द्र बरुआ, गुनाभिराम बरुआ ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी । इस मासिक पत्रिका को प्रकाशित करने में ईसाई मिसनरियों का काफ़ी महत्त्वपूर्ण योगदान था । इस पत्रिका को प्रमुखत: ईसाई धर्म के प्रचार करने हेतु प्रकाशित किया गया था परंतु इसमें अनुवाद, धर्म, असम का इतिहास, कविता, जीवनी, कहानी, दो एक परिचय सूचक आलोचनात्मक लेख आदि प्रकाशित हुए । सन 1855 में आनंदराम ढेकियाल फुकन ने अंग्रेजी में एक पुस्तिका निकाली जिसमें असमिया भाषा की स्वतंत्रता, बांग्ला भाषा को असमिया भाषा पर थोप देने का नतीजा आदि पर आलोचना की गई हैं । 'A Few Remarks on Assamese Language' नामक इस पुस्तिका का आलोचना के क्षेत्र में काफ़ी महत्त्व रहा है । इस युग में अरुणोदोई के साथ आसाम विलासिनी (1871-83), आसाम मिहिर (1872-73), आसाम

दर्पण (1874-75), आसाम बंधु (1885-86) नामक पत्रिकाएँ निकली लेकिन असमिया आलोचना साहित्य के क्षेत्र में इनका कोई खास योगदान नहीं था । हेमचन्द्र बरुआ, गुनाभिराम बरुआ, लंबोदर बोरा, भोलानाथ दास, सत्यानाथ बोरा आदि जैसे लेखकों का असमिया गद्य-पद्य साहित्य और विशेष कर भाषा साहित्य में काफ़ी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा परंतु असमिया आलोचना साहित्य में कोई विशेष योगदान नहीं रहा ।

"Literary criticism was not known in Assamese till the impact of the west. This critical literature as a type was first begun in the pages of the Arunoday and is continued later on by other journals. But the early criticism were mere catalogues of the merits and defects of men and books."[२६]

तत्पश्चात रमनन्यास युग(1889-1940) का प्रारम्भ हुआ । गुनाभिराम बरुआ द्वारा संपादित 'आसाम बंधु' पत्रिका में रमन्यासवाद का पहला आभास मिला । इसी युग में असमिया आलोचना साहित्य का विकास हुआ । इस युग में चंद्रकुमार अगरवाला द्वारा संपादित 'जोनाकी'(1889) नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित हुई जो 'असमिया भाषा उन्नति साधिनी सभा' का मुखपत्र था । इसी पत्रिका के माध्यम से कई असमिया युवा लेखक ने आत्मप्रकाश किया । इस पत्रिका में 'कृपावर बरुआ' चरित्र की समालोचना प्रकाशित हुई थी । इसलिए इस युग को जोनाकी युग भी कहा जाता है । बिजुली(1890) नामक पत्रिका ने भी काफ़ी योगदान दिया । इस युग में लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ, रघुनाथ चौधारी, चन्द्र कुमार अगरवाला, हेमचन्द्र गोस्वामी, रजनीकान्त बोरदोलोई, सत्यनाथ बोरा, कालीराम मेधी, पद्मनाथ गोहाईं बरुआ, कमलकान्त भट्टाचार्य जैसे लेखक हुए जिन्होंने असमिया साहित्य को नया आयाम दिया । सत्यनाथ बोरा (1860-1925) ने सारथी, चिंताकली, साहित्य विचार जैसी भाव चिंतन युक्त रचना रची । इनके द्वारा रचित 'साहित्य विचार' को ही असमिया आलोचना साहित्य का पहला शुद्ध आलोचनात्मक कृति माना जाता है । " The first noteworthy treatise on pure literary criticism was, however, 'Sahitya vichar' by Satyanath Borah in which both Indian and English methods of literary assessment were briefly described"[२७]

इस काल में ही असमिया समालोचना साहित्य का विकाश हुआ और समालोचना साहित्य के विकाश में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई लक्ष्मीनाथ बेज़बरुआ ने । पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन कर इनके आलोचनात्मक व्यक्तित्व को नयी दृष्टि मिली । "इसी काल में प्रबंध साहित्य, व्यंग रचना और समालोचना साहित्य का उद्भव और विकाश ध्यान देने योग्य है । ..... समालोचना के विकाश में अग्रगनी भूमिका निभाई लक्ष्मीनाथ बेजबारूआ ने ।"[२८]

इन्होंने सम-सामयिक पत्रिका 'बाही' में 'काहूदी और खारली' शीर्षक समालोचनात्मक टिप्पणी प्रकाशित की तथा साहित्य एवं समाज संबंधी अनेक समालोचनात्मक प्रबंध प्रकाशित की जिन्होंने उनके साहित्य के भंडार को पुष्ट किया । 'जोनाकी' और 'बाही' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने समालोचना की एक नयी रीति प्रतिष्ठित की थी । बेज़बरुआ जी ने असम के महामणि, वैष्णव धर्म के प्रचारक शंकरदेव पर आलोचनात्मक पुस्तक लिखी जो असमिया साहित्य के लिए स्तम्भ स्वरूप खड़ी हुई । यह पुस्तक आधुनिक असमिया साहित्य का पहला समालोचनात्मक ग्रंथ के रूप में परिचित है ।

जोनाकी युग में लम्बोदर बोरा, हेमचन्द्र गोस्वामी, पद्मनाथ गोहाईंबरुवा ने समालोचना साहित्य के विकास में काफ़ी योगदान दिया । असमिया आलोचना के विकास में सत्यनाथ बोरा, कालिराम मेधी, देवानन्द भोराली, डॉ॰ सूर्यकुमार भुईया, डॉ॰ वाणिकांत काकती, डिंबेश्वर नेओग, रत्नकान्त बोरकाकती आदि का नाम उल्लेखनीय हैं । इन आलोचकों ने असमिया आलोचना साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया ।

देवेन्द्रनाथ बेजबरुआ द्वारा रचित 'असमिया साहित्योर बुरोंजी'(1912) में यद्यपि सूक्ष्म आलोचना का अभाव है फिर भी यह असमिया की पहली ऐसी रचना है जिसमें असमिया साहित्य एवं साहित्यकारों का परिचय मिलता है । हेमचन्द्र गोस्वामी के 'असमिया साहित्यर चानेकी'(1923-29) के प्राक कथन में भी असमिया साहित्य के विषय में काफ़ी जानकारी मिलती है । इनके द्वारा ही अंग्रेजी में रचित 'A Descriptive Catalogue of Assamese

Manuscripts'(1930) में प्राचीन असमिया साहित्य के सभी लेखकों और रचनाओं का परिचय मिलता हैं । डिंबेश्वर नेऔग(1899-1967) ने इस क्षेत्र में काफ़ी उल्लेखनीय अवदान दिया है । उनके द्वारा रचित 'आधुनिक असमिया साहित्यर बुरंजी'(1936), 'असमिया साहित्यर बुरंजित भूमुकी'(1940), 'असमिया साहित्यर बुरंजी'(1956) में असमिया भाषा–साहित्य के उद्भव, विकास एवं अन्य क्षेत्रों पर विस्तार से आलोचना की गयी हैं । 'असमिया साहित्यर जिलिकोणी'(1939), 'असमिया साहित्यर जेयोति'(1952) और उनके द्वारा रचित कई निबंधों में असमिया साहित्य पर आलोचना की गयी हैं । उनके विचारों का प्रस्फुटन उनके रचनाओं में हुआ है । उन्होंने प्रमुखत साहित्य के सौंदर्य उदघाटन में मनोनिवेश किया था । वैष्णव साहित्य से लेकर आधुनिक युग के कई लेखक एवं कवि तथा उनके साहित्य का विचार-विश्लेषण उन्होंने किया है ।

आधुनिक असमिया साहित्य के श्रेष्ठ आलोचक रहे हैं डॉ॰ वाणिकांत काकती । आधुनिक युग के विभिन्न कवियों के काव्य की भूमिका जो उन्होंने लिखी है, उनमें उनकी समालोचनात्मक दृष्टि सामने आयी है । धर्म एवं साहित्य के संदर्भ में रचित निबंधों में भी उनकी समालोचक प्रतिभा का परिचय मिलता है । 'चेतना' नामक पत्रिका में उनकी प्राचीन असमिया साहित्य पर कई लेख प्रकाशित हुए । 'पुरोनी असोमिया साहित्य'(1940), और 'साहित्य आरू प्रेम'(1948) उनके द्वारा रचित ऐसे दो ग्रंथ हैं जिनमें उनकी समालोचनात्मक अध्ययनशीलता और पांडित्य का प्रतिफलन हुआ है । उनकी पर्यावेक्षण क्षमता अंतर्भेदी और अतीव शुक्ष्म थी । 'वाणीप्रतिभा' उनके मृत्यु के पश्चात प्रकाशित निबंध संग्रह है, जिसमें कई आधुनिक कवि एवं उनके काव्य का मूल्यांकन कर उनके विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया हैं । 'बिजुली' नामक पत्रिका में असम के वैष्णव मत के प्रचारक और वैष्णव मत पर कई लेख प्रकाशित किए । सामान्य रूप में हम कह सकते है कि वाणिकांत जी ने असमिया आलोचना साहित्य को पुष्ट करते हुए नया आयाम दिया ।

डॉ॰ बिरिञ्चि कुमार बरुआ द्वारा अंग्रेजी में रचित 'History of Assamese Literature' (1941) भी इस क्षेत्र में काफ़ी महत्त्व रखता है । इस पुस्तक में असम और असमिया भाषा, वैष्णव

काल के उद्भव एवं साहित्य, आहोम एवं उस काल के असमिया साहित्य, आधुनिक काल का प्रारम्भ, काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, आलोचना साहित्य, अन्य गद्य साहित्य आदि पर विचार-विश्लेषण किया गया हैं । उनके द्वारा रचित 'काव्य आरू अभिव्यंजना' उच्च कोटि का समालोचनात्मक ग्रंथ है । इसमें क्रोचे द्वारा प्रतिष्ठित अभिव्यंजनावाद और संस्कृत साहित्य और अलंकारशास्त्र पर विचार-विश्लेषण किया गया हैं । 'असमिया कथा साहित्य' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ में उन्होंने असमिया गद्य साहित्य के उद्भव एवं मुल्यांकन पर विचार किया है । असमिया लोगों के जीवन तथा उनके संस्कृति पर विचार करते हुए उन्होंने जो निबंध लिखे हैं वे 'असमिया भाषा आरू संस्कृति' में संकलित हैं ।

आधुनिक काल के असमिया समालोचकों में हम नाम ले सकते हैं उमाकांत शर्मा, त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी, अतुलचन्द्र बरुआ, हेम बरुआ, जग्यश्वर शर्मा, बापचन्द्र महंत, होमेन बरगोहाई, डॉ॰हीरेन गोहाई, बीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य, शिवनाथ बर्मन, भबेन बरुआ, महेश्वर नेओग, लीला गोगोई, तीर्थनाथ शर्मा, महेंद्र बोरा, डॉ॰ सत्येंद्र नाथ शर्मा, उपेन्द्रनाथ गोस्वामी, गोलोकचन्द्र गोस्वामी, सत्येन्द्र नारायण गोस्वामी, प्रमोद भट्टाचार्य, इमदाद उल्ला, कबीन फुकन, आनंद बरमुदै, हिरेन दत्त आदि ।

त्रैलोक्यनाथ गोस्वामी द्वारा रचित 'साहित्य आरु समालोचना' में आलोचना साहित्य के विभिन्न धारा, विशिष्टता आदि पर विचार किया है। उनके ग्रन्थों में तुलनात्मक, पाश्चात्य एवं प्राच्य में रस की अवधारणा, साहित्य के नन्दनतात्विक विचार धारा आदि की व्याख्या की गयी है । उनकी समालोचनात्मक किताब तात्विक एवं व्यावहारिक दृष्टि रखती है । 'असमिया गल्प साहित्य'(1966), 'इंग्राजी साहित्यर धारा आरू असमिया साहित्यत तार प्रभाव'(1970), 'नन्दनतत्व-प्राच्य आरु पाश्चात्य'(1980) ऐसी ही पुस्तके हैं ।

सत्येंद्रनाथ शर्मा आधुनिक काल के अनुभवी समालोचक है । उनके द्वारा रचित 'असमिया उपन्यासर भूमिका', 'उपन्यासर गतिधारा', 'असमिया साहित्यर समिखात्मक

इतिब्रित' ऐसी समालोचनात्मक पुस्तके हैं जिनमें असमिया साहित्य के विकास पर गहराई से चर्चा की गयी हैं । मौखिक साहित्य पर अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने 'असमिया साहित्यर समिखात्मक इतिब्रित' पुस्तक में लिखा है "यदि हम आस-पास के पहाड़ी जन-जातिओं को देखे तो पाते हैं कि इनमें से ज्यादातर के पास लिखित साहित्य नहीं हैं परंतु मौखिक गीत-साहित्य और कहानियाँ प्रचलित हैं ।"[२९]

उमाकांत शर्मा के 'काव्य भूमि' में साहित्य में रस की उपयोगिता पर विचार किया गया है । हेम बरुआ द्वारा रचित 'आधुनिक साहित्य'(1950), 'साहित्य आरु समस्या'(1979) आदि ग्रन्थों में आधुनिक चिंतन-धारा, आदर्श और पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव परिलक्षित होता है । अतुलचन्द्र बरुआ की 'साहित्यर रूपरेखा'(1947) में साहित्य के लक्षण, संज्ञा आदि पर आलोचना की गयी है । 'समालोचना साहित्य'(1958), 'साहित्य-जीवन', 'असमिया काव्यर प्रेमर बोवोति सूँती'(1970) में अतुल जी ने व्याख्यात्मक शैली में असमिया साहित्य की आलोचना प्रस्तुत की है । महेश्वर नेओग की 'आधुनिक असमिया साहित्य'(1965), 'असमिया गीति-साहित्य'(1948), 'असमिया साहित्यर रूपरेखा'(1962) में प्राचीन असमिया गद्य साहित्य पर विचार किया गया है । प्रफुल्ल दत्ता गोस्वामी के 'असमिया जन साहित्य'(1948), 'साहित्य आरू जीवन'(1956) में असमिया गद्य परम्परा तथा साहित्य पर आलोचना की गयी है । तीर्थनाथ शर्मा की 'पंच पुष्पित'(1969), 'भक्तिवाद'(1978), 'साहित्य विद्या परिक्रमा'(1962) भी उल्लेखनीय समालोचनात्मक ग्रंथ हैं । उपेंद्र नाथ गोस्वामी की 'भाषा आरू साहित्य' में साहित्य की विविध दृष्टि से आलोचना की गयी है । डॉ॰ होमेन बरगोहाई और डॉ॰ हीरेन गोहाई इस काल के सशक्त आलोचक हैं । डॉ॰ होमेन बरगोहाई की 'विश्वास आरू संशय'(1968), 'धूसर दिगंत'(1970), 'जिज्ञासा'(1979) और डॉ॰ हीरेन गोहाई की 'साहित्य आरू सत्य'(1971), 'साहित्य आरू चेतना'(1976), महेंद्र बरा की 'रमन्यासबाद'(1976), अतुल चंद्र बरुआ की 'साहित्यर रूपरेखा'(1958), 'साहित्य दृष्टि', 'समालोचना साहित्य'(1958), हेमंत कुमार शर्मा की 'असमिया साहित्यत दृष्टिपात'(1961), हेम बरुआ की 'साहित्य आरू साहित्य'(1962), सत्यप्रसाद बरुआ

की 'नाटक आरू अभिनय-प्रसंग'(1962), लीला गोगोई की 'असमिया लोक-साहित्यर रूपरेखा'(1965) का असमिया आलोचना साहित्य में उल्लेखनीय अवदान हैं । असमिया आलोचना साहित्य के विद्वान समालोचक रहे है बापचन्द्र महंत । 'जीवन आरू साहित्य'(1962), 'साहित्य दर्शन'(1963), 'भारतीय धर्मसाधना'(1967), 'नामघोषार तत्वदर्शन'(1978) आदि ग्रन्थों में उन्होंने विश्लेषणात्मक ढंग से साहित्य पर चर्चा करते हुए समालोचना साहित्य को पुष्ट किया है । भवेन बरुआ द्वारा रचित 'नतुन समालोचना' तथा गोविंद प्रसाद शर्मा, हिरेन्द्र नाथ दत्त का भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय अवदान हैं । इसी क्रम में प्रो॰ कृष्ण नारायण प्रसाद का नाम असमिया आलोचना के क्षेत्र में उल्लेख कर सकते है, जिन्होंने हिंदी साहित्य में असमिया रामायणी साहित्य, शंकरदेव, माधवदेव, वैष्णव साहित्य आदि पर आलोचनात्मक ग्रंथ लिखा और आलोचना के भंडार को पुष्ट किया ।

निष्कर्षत: प्रस्तुत अध्याय में आलोचना के उद्भव-विकास पर चर्चा करते हुए आलोचना क्षेत्र से जुड़े काफ़ी तथ्यों पर नजर डालने का मौका मिला । आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति से लेकर आलोचना के अर्थ तथा स्वरूप पर भी विचार किया गया । आलोचना के भिन्न प्रकार पर दृष्टिपात किया गया । इस दौरान हमें आलोचना के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक पक्ष को भालिभाँति जानने का अवसर मिला । आलोचना की परिभाषा और परंपरा पर विचार करते हुए आलोचना संबंधी पाश्चात्य, भारतीय(हिंदी) और असमिया परिभाषा पर अलग-अलग रूप से और संक्षिप्त रूप में प्रकाश डाला गया । आलोचना की परंपरा को देखा जाए तो प्रारम्भिक अवस्था में पाश्चात्य एवं प्राच्य में स्वतंत्र रूप से आलोचना का आरंभ तथा विकास होता रहा परंतु कुछ समय बाद पाश्चात्य आलोचना का प्रभाव हिंदी आलोचना साहित्य पर पड़ा और धीरे धीरे अन्य भारतीय भाषाओं के आलोचना पर भी इसका प्रभाव पड़ता गया । असमिया आलोचना साहित्य भी इससे अछूता न रह पाया । इस तरह पाश्चात्य के प्रभाव से परंतु सम्पूर्ण स्वतंत्र रूप में हिंदी तथा असमिया आलोचना साहित्य का विकास होता गया और लगातार हो रहा है । इसी क्रम में हम प्रो॰ 'मागध' का नाम ले सकते है । जिनकी आलोचनात्मक कृतियों के कारण असमिया आलोचना

साहित्य को हिंदी साहित्य के बृहत्तर क्षेत्र में प्रविष्ट होने का मौका मिला और असम के शिरोमणि श्रीमंत शंकरदेव तथा श्रीमंत माधवदेव को हिंदी साहित्य का बृहद प्रेक्षापट मिला । हिंदी साहित्य भी असम के इन महानुभवों की रचनाओं की आलोचना से सम्बृद्ध हुआ ।

संदर्भ सूची:-

१. मिश्र, डॉ॰ रामप्रसाद, *आलोचना की कुछ नई दिशाएँ*, प्रेम प्रकाशन, 1977, पृष्ठ संख्या 125

२. नवल, नन्द किशोर, *हिंदी आलोचना का विकास*, राजकमल प्रकाशन, पटना, 2007, पृष्ठ संख्या 26

३. चतुर्वेदी, डॉ॰ राजेश्वर प्रसाद, *हिंदी आलोचना के आधार स्तम्भ*, रीगल बूक डिपो-एम, 2005, पृष्ठ संख्या 106

४. चतुर्वेदी, डॉ॰ राजेश्वर प्रसाद, *हिंदी आलोचना के आधार स्तम्भ*, रीगल बूक डिपो-एम, 2005, पृष्ठ संख्या 107

५. सिंह, डॉ॰ राजकिशोर, डॉ॰ दुर्गाशंकर मिश्र, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत*, प्रकाशन केंद्र लखनऊ, 1985, पृष्ठ संख्या 271

६. सिंह, डॉ॰ राजकिशोर, डॉ॰ दुर्गाशंकर मिश्र, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत*, प्रकाशन केंद्र लखनऊ, 1985, पृष्ठ संख्या 274

७. चतुर्वेदी, डॉ॰ राजेश्वर प्रसाद, *हिंदी आलोचना के आधार स्तम्भ*, रीगल बूक डिपो-एम, 2005, पृष्ठ संख्या 108

८. सिंह, डॉ॰ राजकिशोर, डॉ॰ दुर्गाशंकर मिश्र, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत*, प्रकाशनकेंद्र, लखनऊ, 1985, पृष्ठ संख्या277

९. सिंह, डॉ॰ राजकिशोर, डॉ॰ दुर्गाशंकर मिश्र, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत*, प्रकाशन केंद्र लखनऊ, 1985, पृष्ठ संख्या 268

१०. सिंह, डॉ॰ राजकिशोर, डॉ॰ दुर्गाशंकर मिश्र, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत*, प्रकाशन केंद्र लखनऊ, 1985, पृष्ठ संख्या 2

११. चतुर्वेदी, डॉ॰ राजेश्वर प्रसाद, *हिंदी आलोचना के आधार स्तम्भ*, रीगल बूक डिपो-एम, 2005, पृष्ठ संख्या 68

१२. सिंह, डॉ॰ राजकिशोर, डॉ॰ दुर्गाशंकर मिश्र, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत*, प्रकाशन केंद्र लखनऊ, 1985, पृष्ठ संख्या 2

१३. अवस्थी, डॉ॰ देवीशंकर, *आलोचना का द्वंद*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ संख्या 78

१४. चतुर्वेदी, डॉ॰ राजेश्वर प्रसाद, *हिंदी आलोचना के आधार स्तम्भ*, रीगल बूक डिपो-एम, 2005, पृष्ठ संख्या 69

१५. सिंह, डॉ॰ राजकिशोर, डॉ॰ दुर्गाशंकर मिश्र, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत*, प्रकाशन केंद्र लखनऊ, 1985, पृष्ठ संख्या 4

१६. Jr. Wimsatt, William K., Cleanth Brooks, *Literary Criticism A short history*, Oxford and IBH publishing co. pvt. Ltd., New Delhi, 1957, पृष्ठ संख्या 724.

१७. तिवारी, डॉ॰ रामचन्द्र, *साहित्य का मूल्यांकन(अनुवाद)*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृष्ठ संख्या 11

१८. अवस्थी, देवीशंकर, *आलोचना का द्वंद*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ संख्या 79

१९. सिंह, डॉ॰ राजकिशोर, डॉ॰ दुर्गाशंकर मिश्र, *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत*, प्रकाशन केंद्र लखनऊ, 1985, पृष्ठ संख्या 269

२०. तिवारी, डॉ॰ रामचन्द्र, *साहित्य का मूल्यांकन(अनुवाद)*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008, पृष्ठ संख्या 18

२१. अवस्थी, देवीशंकर, *आलोचना का द्वंद*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009, पृष्ठ संख्या 82

२२. नवल, नंदकिशोर, *हिंदी आलोचना का विकास*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या 1

२३. मिश्र, डॉ॰ भगवतस्वरूप, *हिंदी आलोचना: उद्भव और विकास*, , पृष्ठ संख्या 276

२४. शर्मा, डॉ॰ सत्येंद्रनाथ, *असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त*, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2013, पृष्ठ संख्या 376

२५. नेओग, डॉ॰ महेश्वर, *असमिया साहित्यर रूपरेखा'*, चंद्रप्रकाश, गुवाहाटी, 2012, पृष्ठ संख्या 314

२६. बरुआ डॉ॰ बिरिञ्चि कुमार, *History of Assamese Literature*, साहित्य अकादेमी, कोलकाता , 2003 पृष्ठ संख्या 190

२७. बरुआ डॉ॰ बिरिञ्चि कुमार, *History of Assamese Literature*, साहित्य अकादेमी, कोलकाता , 2003 पृष्ठ संख्या 191

२८. शर्मा, डॉ॰ सत्येंद्रनाथ, *असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त*, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2013, पृष्ठ संख्या 281

२९. शर्मा, डॉ॰ सत्येंद्रनाथ, *असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिबृत्त*, सौमार प्रकाश, गुवाहाटी, 2013, पृष्ठ संख्या 18